सिमरन

भाग - १०

इस श्रंखला के पिछले भागों में 'सिमरन' के अनेक पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है।

जिस प्रकार शारीरिक रोगों के पूर्ण इलाज के लिए **'परहेज़'** आवश्यक है, या किसी मशीन को चालू रखने के लिए कई **'बचाव'** के साधनों की आवश्यकता होती है—उसी प्रकार परमार्थ के साधकों को भी **'सिमरन'** जैसी अति सूक्ष्म **आत्मिक 'साधना' के लिए** कई प्रकार के **'परहेज़'** जरुरी हैं। यदि हम इन **परहेज़ के साधनों से बेपरवाह या लापरवाह** रहेंगे तो **हमारी रुचि 'सिमरन' वाली नहीं** बन सकती, हम ऊपरी मन से ही सिमरन करने की **'नकल'** या **'दिखावा' करते रहेंगे।**

पूछत पथिक तिह मारगि न धारै पगि
प्रीतम कै देस कैसे बातन से जाईऐ।
पूछत है बैद खात औखधि न संजम सै
कैसे मिटै रोग सुख सहजि समाईऐ।
पूछति सुहागिन है, करमि दुहागनि कै
रिदै बिभचार कत सिहजा बुलाईऐ।
गाइ सुनै आंखे मीचै पाईऐ न परम पदु
गुरु उपदेस गहि जौ लौ न **कमाईऐ**। (कबित ४३९ भा. गु. जी.)

हमारा मन बड़ा चंचल तथा **'पिछलग्गू'** है ! ''जिनी लाई गलीं उसे नाल उठ चली'' (अर्थात जिसकी बात सुनी उसी के पीछे चल पड़े) वाली कहावत के अनुसार हमारा मन बहुत शीघ्र **बाहर का असर 'ग्रहण' करके 'ताता-सीरा'** हो जाता है ।

हम जन्मों-जन्मांतरों से बाहर के अनेक असर ग्रहण करते आए हैं । उन विचारों को **दोहराकर** या **घोट-घोट** कर अपने अंतःकरण के स्टोर में इकट्ठा किया हुआ है । जब बाहर से कोई **उकसाहट मिलती है** तो अन्तःकरण की गहराईयों से **पुरानी मानसिक ग्लानि की दुर्गन्ध उभर कर आ जाती है** तथा हम उस मानसिक रंगत के प्रभाव में विवश, कर्मबद्ध होकर अनेक प्रकार की **तुच्छ रुचियों के शिकार हो जाते हैं** जैसे –

ईर्ष्या-द्वेष
वैर-विरोध
लड़ाई-झगड़े
नफरत-जलन
झूठ-फरेब
छीना-झपटी
खींच-तान
चोरी-यारी
ब्लैक-स्मगलिंग
शारीरिक-रस-कस
फैशन-परस्ती
निंदा-चुगली
व्यर्थ झमेले
व्यर्थ चर्चा
कुसंगति

आदि ।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक बनावट अथवा वातावरण अनुसार **अनजाने ही इन रुचियों** का अभ्यास अथवा **सिमरन** करता रहता है। बार-बार याद करके, दोहराने से इन रुचियों की आदत पक्की होती जाती है जो धीरे-धीरे **अन्तःकरण में धँस-बस-रस कर हमारा 'जीवन-रूप' ही हो जाती है।** इस प्रकार हमारा स्वभाव, आचरण या व्यक्तित्व भी नीच, मलिन तथा घृणत होता जाता है। ऐसे **मलिन, घृणित स्वभाव तथा आचरण** के कारण **हमारे घरों में तथा संपूर्ण संसार के वातावरण पर बुरा असर पड़ता जा रहा है** – जिस कारण दुनिया में अशान्ति, वैर, विरोध, लड़ाईयां, झगड़े बढ़ रहे हैं।

दैनिक जीवन की इस **दिनचर्या** (routine) को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित प्रमाण दिया जा सकता है –

शराबी (या अन्य कोई अमली) जब काफी समय तक लगातार प्रतिदिन शराब पीता रहे तो उस के शरीर में शराब तथा उसके अवगुणों का असर **धंस, बस, रस** जाता है। यहाँ तक कि उसकी रग-रग में शराब की रंगत(essence) समा जाती है तथा वह **शराब का स्वरूप ही बन जाता है।** जो कुछ भी वह सोचता है, चिंतन करता है, कर्म करता है, उस पर शराब के अवगुणों की **'झलक'** दिखाई देती है। उसके जीवन में शराब का रंग इतना गहरा चढ़ जाता है, कि वह खुद ही शराब का **'साक्षातरूप'** (embodiment) बन जाता है।

इस प्रकार का पक्का शराबी, 'शराब' के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकता। उस की हालत **"भुक्खे नु बात पाईए – टुक"** अर्थात् (अन्धे को क्या चाहिए– दो आंखें) वाली बन जाती है। यदि वह देखा देखी कोई और काम करता भी है तो उस पर भी **शराब की गहरी 'रंगत' ही चढ़ी होती है** या **'मोहर' लगी** होती है।

इसलिए जब तक हम **तुच्छ मानसिक रुचियों से परहेज़ नहीं करेंगे,** तब तक इतने पाठ-पूजा, कर्म-धर्म, आदि करने के **बावजूद** भी हमारी शारीरिक, मानसिक व धार्मिक अवस्था में **कोई परिवर्तन नहीं आ सकता।**

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ ।।
मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ ।।
बहु बिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ ।।
पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ ।। (पृ. 39)

यदि किसी रोगी को मीठा खाने की आदत हो और वैद्य मीठे से परहेज़ करने के लिए कहे पर मीठा खाने का आदी 'रोगी' चोरी-चोरी या किसी अन्य बहाने से मीठा खाने का यत्न करता रहे तो इससे उसकी **बीमारी घटने की बजाए बढ़ती जाती है ।**

इसी प्रकार हम अपने जीवन की पुरानी मायकी प्रणाली के **'वेग'** (प्रवाह) **में बह रहे हैं** तथा इस हानिकारक **अधोमुखी प्रवाह को बदलने या इससे परहेज़ करने का हमें** –

ध्यान ही नहीं आता
आवश्यकता ही नहीं होती
साहस ही नहीं होता
उद्यम ही नहीं करते ।

इसलिए जिज्ञासुओं की यह आम शिकायत होती है **कि सिमरन** करते हुए **मन नहीं टिकता ।**

तुच्छ रुचियों या अवगुणों से **'परहेज़' करने की जगह हम** दूसरों के अवगुणों को याद करके या **निन्दा-चुगली** करके **'स्वाद'** लेते हैं । इस प्रकार लोगों के अवगुणों के छिद्र खोल-खोल कर उसकी **दुर्गन्ध सूंघते तथा आनन्द लेते हैं जिससे हमारा मन-चित-बुद्धि और भी मलिन होती रहती है ।**

इतना ही बस नहीं, इन –

नीच ख्यालों
मलिन विचारधारा

घृणित व्यवहार
गिले-शिकवे
ईर्ष्या-जलन

— आदि को **घोट-घोट** कर हम अपने हृदय में अत्यन्त 'मिसलें' या **फाइलें** (case files) **बनाते जा रहे हैं।** जब किसी की याद आते ही उसकी 'फाईल' खुलती है तो उसमें से ऐसी **'ज़हरीली भड़ास' निकलती है कि हमारा तन-मन क्रोध तथा नफरत से जल-भुन जाता है।** इस प्रकार की ज़हरीली, मैल से भरी हुई **अनेक गांठें** या **फाइलें** हमने अपने हृदय की गहराईयों में **संभाल कर रखी हुई हैं !**

कैसे दुख की बात है कि **जिस हृदय में अकालपुरुष (ईश्वर) का निर्मल नाम, शब्द, प्रीत, प्रेम, रस, चाव भरना था** वहां इस प्रकार के **घृणित विचारों की रूड़ी (गन्दगी या कूड़ा-करकट) संभाल कर रखी हुई है। इस प्रकार के मलिन भावों से भरे हृदय में निर्मल नाम, शब्द कैसे बस सकता है ?**

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु ॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु ॥ (पृ. १३७९)

मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ ॥ (पृ. ३९)

मनु मैला सचु निरमला किउ करि मिलिआ जाइ ॥
(पृ. ७५५)

भेख दिखावै सचु न कमावै ॥
कहतो महली निकटि न आवै ॥ (पृ. 738)

ऐसा मनमुखी जीवन **'सर्प' की भांति** होता है क्योंकि वे दिन रात सर्प की भांति अपने **अन्दरूनी ज़हर से खुद ही जलते-भुनते, कुढ़ते रहते हैं तथा जो भी उनके सम्पर्क में आये उसे भी अपने ज़हर से जला देते हैं।**

बिनु सिमरन जो जीवनु बलना सरप जैसे अरजारी ॥
(पृ. ७१२)

इसी प्रकार खुद को उत्तम, भला, भद्र, त्रुटिहीन तथा दूसरों को **नीच और बुरा समझ कर नाक चढ़ाना तथा अवगुण छांटने हमारी अहम् की पूर्ण ढिठाई है ।**

इसके **विपरीत** गुरबाणी हमें यूं उपदेश देती है –

हम नही चंगे बुरा नही कोइ ॥
प्रणवति नानकु तारे सोइ ॥ (पृ. ७२८)

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ ॥
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ॥ (पृ. १३६४)

इस **'मानसिक परहेज़'** की एकमात्र सरल तथा कारगर विधि यह है कि जब भी हमारे अंदर किसी के **प्रति कोई तुच्छ, बुरा ख्याल आए तो उसे तत्काल** –

'चलो होने दो'
'कोई बात नहीं'
'फिर क्या हुआ'
'जाने दो'
'चलो छोड़ो'

कह कर उसी समय त्याग दिया जाए ।

ऐसा उत्तम व्यवहार दैवीय गुण 'क्षमा' से उत्पन्न हो सकता है, परन्तु हम तो इस गुण से बिल्कुल अनजान हैं जैसे 'क्षमा' का यह उपदेश तो केवल दूसरों के लिए ही उच्चारित किया गया हो । **'ईंट का जवाब पत्थर से देना'** ही हम अपना **फर्ज समझते हैं** तथा धीरे-धीरे यही हमारा स्वभाव बन जाता है, जिस कारण संसार में वैर-विरोध, नफरत, खींचतान, लड़ाई-झगड़े **बढ़ रहे हैं ।**

आदिकाल से ही गुरूओं, अवतारों, पीर, पैगम्बरों ने इन्सान को दूसरों के अवगुणों को अनदेखा करने अथवा **'क्षमा' करने की प्रेरणा दी है।** किसी ने तीन बार, किसी ने सात बार, किसी ने सत्तर बार **'माफ' करने का उपदेश दिया है।**

पर धन गुरू नानक साहिब ने महसूस किया कि मनुष्य तो सदा 'भूलनहार' है –

लेखै कतहि न छूटीऐ खिनु खिनु भूलनहार ॥
बखसनहार बखसि लै नानक पारि उतार ॥ (पृ. २६१)

'बच्चे' अनेक त्रुटियां करते हैं, पर मां अपने **मां-प्यार** में बच्चे के **सभी अवगुणों को अनदेखा करके,** बच्चे को प्यार करती है।

इसी प्रकार हम ईश्वर के बच्चे हैं तथा इलाही मां-बाप के नाते ईश्वर भी अपने 'बिरद'(कर्त्तव्य) के अनुसार हमारी त्रुटियाँ या **अवगुण भुला कर सदा 'क्षमा' करता रहता है।** यदि ईश्वर भी हमारे सारे अवगुण या पाप हमें **याद करवाये** या हमारे कर्मों का लेखा-जोखा करे तो 'मायकी नर्क' में से **हमारा कल्याण कदाचित नहीं हो सकता।**

पर जहां परमेश्वर खुद **'सद-बखशिंद', 'सदा मेहरवान'** है वहां हम इन्सानों को भी निम्नलिखित **दैवीय गुण ग्रहण करने की ताकीद की गई है जो 'सिमरन' करने में सहायक होते हैं** –

'रोस न काहू संग करहु'
'आपन आप बिचारि'
'पर का बुरा न राखहु चीति'
'बुरे दा भला करि'
'गुसा मन न हंडाइ'
'पर निन्दा सुण आपु हटावै'
'सांझ करीजै गुणह केरी'

'छोडि अवगुण चलिऐ'
'दया छिमा तन प्रीति'
'ना को बैरी नहीं बिगाना'
'चलण जाणि जुगति मिहमाणा'
'देख के अणडिठ करना'
'अल्प-आहार'
'सुलप सी निंद्रा'
'थोड़ा बोलणा'
'अलिप्त रहना'

आदि ।

परन्तु संसार के व्यवहार की ओर गौर से देखें, तो नित्य-प्रतिदिन के जीवन से यह बात स्पष्ट होती है, कि संसार में –

1. लेकर खुश होने वाले **सभी,** परन्तु अपने पास से कुछ दे कर भला मानने वाला कोई **विरला** ही होता है । **(हाथों दे कर भला मनाए)**

2. कथनी वाले 'ज्ञानी' **सभी,** पर **व्यवहारिक जीवन वाले विरले ही होते हैं ।**

   जगि गिआनी विरला आचारी ॥ (पृ. ४१३)

3. खाने वाले सभी, पर 'खिलाने' वाला कोई विरला ।

4. **'पर-अवगुण' देखने वाले सभी, पर अपने 'अवगुण' देखने वाला कोई विरला ।**

5. दूसरों के अवगुणों की **चर्चा** करने वाले तो सभी होते हैं, पर **'देख कर अनदेखा' करने** तथा **सुन कर अनसुना करने वाले विरले होते हैं ।**

6. कड़वा व फीका बोलने वाले सभी, पर **मीठा बोलने वाला कोई विरला।**

7. **'निन्दा' करने वाले सभी, पर अपनी निंदा सुनकर खुश होने वाला कोई विरला ।**

8. 'बुरा' करने वाले बहुत पर **'बुरे का भला' करने वाला कोई विरला।**

9. रोष करने वाले सभी, पर **'रोष न काहू संग करहु आपन आप बीचारि' वाला कोई विरला ।**

10. 'ईर्ष्या द्वेष' की गांठें बांधने वाले सभी, पर **'पर का बुरा न राखहु चीत' वाला कोई विरला ।**

11. डंडी मारने वाले बहुत, पर **'पूरा तोलने' वाला कोई विरला ।**

12. समय काटने वाले बहुत, पर **'फर्ज' या 'कर्तव्य' निभाने वाला कोई विरला ।**

13. **'आग लगाने' वाले सभी, पर बुझाने वाला कोई विरला ।**

14. **दिल के शीशे को 'तोड़ने' वाले सभी, पर जोड़ने वाला कोई विरला ।**

15. खिले हुए हृदय को **'मुरझाने' वाले सभी, पर मुरझाए हुए को खिलाने वाला कोई विरला ही होता है ।**

क्या कहें, हर तरफ तुच्छ मायकी रुचियों या अवगुणों की ही **भरमार है।** मन-वचन-कर्म के कारण हम दिन-रात **"कूड़ फिरे परधान वे लालो"** वाला जीवन जी रहे हैं (अर्थात् झूठ ही प्रधान है, असत्य का ही बोलबाला है) । इस प्रकार हम स्वयं अपने-आप से तथा लोगों से **धोखा** कर सकते हैं पर **'धर्मराज' के दण्ड से मुक्त नहीं हो सकते ।** अहम् की इस ढिठाई के कारण हम **लोक-परलोक दोनों गँवा कर, आवागमन के चक्र में बार-बार 'ख्वार' दुःखी होते हैं ।**

हम अपने अनन्त अवगुणों की माफी के लिए तो प्रार्थना करते हैं पर दूसरों के अवगुणों (त्रुटियों) को **एक बार भी माफ करने या भुलाने**

के लिए तैयार नहीं । हम स्वयं बने हुए जज (self-appointed judge) लोगों की त्रुटियों का फैसला करने अथवा **'आरोप' लगाने के लिए तत्पर रहते हैं,** पर जब कोई हमारी त्रुटियां बताता है तो **हम घबराते हैं, रोष करते हैं ।**

सृष्टि में प्रत्येक वस्तु बदल रही है – केवल 'ईश्वर' व उसका 'नाम' ही अटॅल है ।

ऐसी बदलती हुई दुनियां में प्रत्येक जीव अपनी-अपनी संगत तथा वातावरण अनुसार **बदल रहा है ।**

जो जीव आज **'मनमुख'** है वह उत्तम संगत द्वारा धीरे-धीरे **गुरमुख** बन सकता है । इसके विपरीत बुरी संगत अथवा कुसंगति द्वारा जीव **गुरमुख अवस्था से मानसिक मंडल की ओर नीचे खिसक सकता है ।** इसलिए तुच्छ रुचियों अथवा कुसंगति से **बचना या परहेज़ करना आवश्यक है ।**

निम्न कोटि की संगत अथवा कुसंगति के असर से बचने के लिए बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगत या साध संगत ही **सहायक हो सकती है ।** जिस प्रकार सूर्य की तरफ पीठ करते ही, हम सूर्य के अनेक सुखों से वंचित हो जाते हैं तथा अन्धकार के सभी अवगुण हमारे अंदर प्रवेश कर जाते हैं । इसके विपरीत सूर्य की ओर मुख करने से सूर्य के अनेक गुण – प्रकाश, गर्मी, जीवन, खेड़ा (खुशी) आदि **सहज ही प्राप्त हो जाते हैं** तथा **'अन्धकार' की तरफ अपने आप ही पीठ हो जाती है ।** ठीक इसी प्रकार साध संगति में विचरण करते हुए हमारे मन से तुच्छ मायकी रुचियों की या **कुसंगति की मैल उतरती जाती है** तथा हृदय में **सिमरन करने की रुचि, चाव व उत्साह उत्पन्न होता है** –

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता ।।
मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता ।। (पृ. ८०९)

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।
संत मंडल महि **दुरतु सभु नसै** ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।।
संतसंगि होइ एक परीति ।। (पृ. ११४६)

ऊठत बैठत हरि भजहु साधू संगि परीति ।।
नानक दुरमति छुटि गई पारब्रहम बसे चीति ।। (पृ. २९७)

साधसंगति कै बासबै कलमल सभि नसना ।।
प्रभ सेती रंगि रातिआ ता ते गरभि न ग्रसना ।। (पृ. ८११)

साधसंगत तथा सिमरन करते हुए सहज ही **दैवीय गुण मन में प्रवेश करते जाते हैं तथा हमारा जीवन बदलता जाता है ।** तुच्छ मानसिक अवगुणों से 'परहेज़' होता जाता है, तथा गुरु-कृपा द्वारा हमारा 'मनमुख जीवन' बदलकर **'गुरमुख जीवन' बन जाता है ।** इस प्रकार के **गुरमुख जीवन** का गुरबाणी में यूं वर्णन किया गया है –

से गुरसिख धनु धंनु है जिनी गुर उपदेसु सुणिआ हरि कंनी ।।
(पृ. ५९०)

धंनु धंनु सो गुरसिखु कहीऐ
जिनि सतिगुर सेवा करि हरि नामु लइआ ।।
तिसु गुरसिख कंउ हंउ सदा नमसकारी
जो गुर कै भाणै गुरसिखु चलिआ ।। (पृ. ५९३)

जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि
सो गुरसिखु गुरू मनि भावै ।।
जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी
तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै ।।
जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ।। (पृ. ३०५-०६)

एक तरफ 'आत्मिक मंडल' में –

सच्च (सत्य)

हुक्म

नाम

प्यार

निर्मलता

संतोष

दया

धैर्य

क्षमा

सेवा-भाव

मैत्री-भाव

श्रद्धा-भावना

नम्रता

शान्ति

आदि **दैवीय गुणों का प्रवेश तथा प्रकटाव है ।**

दूसरी ओर 'मायकी मंडल' में –

अज्ञानता

भ्रम

शक

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

डर

स्वार्थ

ईर्ष्या-द्वेष

दुख कलेश

आदि **अवगुणों का बोलबाला तथा प्रचलन है ।**

यदि हम 'मायकी-मंडल' से निकल कर 'आत्मिक-मंडल' में प्रवेश करना चाहते हैं तो हमें पहले **पुरानी जीवन-धारा के हर पहलु जैसे** –

ख्याल

चिंतन

निश्चय

जीवन-दिशा

रुचियां

ज्ञान

कर्म

स्वभाव

मनोरंजन

आदि बदलने पड़ेंगे ।

जीवन में यह **महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने** के लिए **बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगत अथवा साध संगत ही एकमात्र कारगर साधन है ।**

ज्यों-ज्यों हम सतसंगत करेंगे, हमारे जीवन का रुख बदलेगा, हमारे मन-वचन-कर्मों में परिवर्तन आएगा । आत्मिक उड़ान भरने के लिए **"कबीर हमरा को नहीं हम किसहू के नाही"** की भांति 'कोरा' होना जरूरी है । 'कोरे' होकर ही हम **'अलिप्त'** रह सकते हैं ।

मैं मेरी में फंसना तो सभी जानते हैं, पर **'माया रूपी' अटॅल कैद से छुटकारा पाने के** लिए हमें उन बख्शे हुए गुरमुख प्यारों की संगति करनी पड़ेगी जो **अलिप्त रहने के उपदेश का पालन करते हैं, व्यवहार में लाते हैं** । वह **"जिनी चलण जाणिआ से किउ करहि विथार"** अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए इस **'झूठे धंधे मोहु' से मुक्त हो जाते हैं । परन्तु ऐसे बख्शे हुए 'गुरमुख प्यारे' कोई विरले ही होते हैं –**

हैनि विरले नाही घणे फैल फकड़ु संसारु ।। (पृ. १४११)

इस प्रकार के 'अलिप्तवर्ती (अलिप्त रहने वाले) सिमरन वाले 'गुरसिख जीवन' की एक झांकी –

साठ वर्ष पहले बर्मा के 'रंगून' शहर के गुरुद्वारे में हमारी एक सिंधी सिक्ख से मुलाकात हुई । वह चुपचाप गुरुद्वारे में सेवा तथा सतसंग करता तथा साफ सुथरा व्यापार करके गुजारा करता था । बचा हुआ सारा समय गुरबाणी के पाठ तथा सिमरन में लगाते हुए अपना जीवन सफल कर रहा था ।

प्रातः काल उठकर वह गुरबाणी का पाठ तथा सिमरन करने के पश्चात गुरुद्वारे में आता व सत्संग से लाभ उठाता । वह अपना सादा भोजन भी खुद बनाता था । भोजन खाकर वह कपड़ों का गट्ठर ले कर शहर में कपड़े बेचने के लिए फेरी लगाता। वह कपड़े बेचने के लिए कोई 'हाँक' नहीं लगाता **अपितु अपना लोहे का 'गज' सड़क पर बजाता था** जिससे लोगों को पता चल जाता कि कपड़े बेचने वाला आया है । मुंह से 'हाँक' देने से उसके 'सिमरन' में बाधा पड़ती थी ।

जब कोई ग्राहक उसे बुलाता तो वह चुपचाप 'गठड़ी' खोल कर कपड़े दिखा देता तथा 'कीमत' बता देता । यदि कोई ग्राहक कीमत कम करने के लिए कहता या सौदेबाजी (bargaining) करता तो वह फौरन 'गठड़ी' इकट्ठी करके चल पड़ता। उसने बताया कि **सौदेबाजी (bargaining) करने से भी उसके 'सिमरन' में विघ्न पड़ता था ।**

इकु तिलु पिआरा विसरै भगति किनेही होइ ।।
मनु तनु सीतलु साच सिउ सासु न बिरथा कोइ ।। (पृ. ३५)

धीरे-धीरे मोहल्ले वालों को पता लग गया कि उसकी कीमतें उचित होती हैं तो लोगों ने कीमत के विषय में खींचतान करनी छोड़ दी ।

पूछने पर उसने बताया कि जब उसकी बिक्री इतनी हो जाती है, जिससे उसे दो रुपऐ दैनिक बच जाएं तो वह फौरन अपने टिकाने पर वापिस आ जाता है । इस प्रकार वह **'अलिप्त' रह कर प्रभु के सिमरन में लगा रहता ।**

उसने अपने विलक्षण जीवन के विषय में संक्षेप में बताया कि वह सिंध (Sindh) प्रांत का रहने वाला है उसका परिवार सिंध में ही रहता है । उसे अपने निर्वाह के लिए एक रुपया दैनिक प्रयाप्त है तथा उसके परिवार के लिए भी एक रुपया प्रतिदिन प्रयाप्त है । इसलिए उसे दो रुपए दैनिक कमाने पड़ते हैं, जिसके लिए वह कपड़ों की फेरी लगाता है ।

जब उसकी दो रुपए की कमाई हो जाती वह उसी समय 'फेरी' से वापिस आ कर **नाम-बाणी सिमरन की सच्ची कमाई में जुट जाता ।**

हरि धनु सची रासि है किनै विरलै जाता ।।
तिसै परापति भाइ रहु जिसु देइ बिधाता ।। (पृ. ३१९)

जिना हरि सेती पिरहड़ी तिना जीअ प्रभ नाले ।।
ओइ जपि जपि पिआरा जीवदे हरि नामु समाले ।। (पृ. ७२५)

वह 'सबर-सबूरी' अर्थात आवश्यकतानुसार पाक-पवित्र कमाई करके संतुष्ट था। माया जोड़ने की लालसा उसे नहीं थी । **उसे तो 'नाम' कमाई अथवा 'सिमरन' की लालसा लगी रहती थी ।**

जब उससे पूछा गया कि उसे ऐसे 'गुरमुख जीवन' का 'ज्ञान' कैसे हुआ, तो उसने बताया कि इस **'गुरमुख जीवन' की देन** उसे अपनी **'माता जी'** की 'सुखमनी-साहिब' की लोरियों से प्राप्त हुई ।

उसके जीवन में –

"आखा जीवां विसरै मरि जाउ"

"गुरमुख होइ सो अलिपतो वरतै"

"ऐसे जन विरले संसारे"

"गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे"

आदि, गुरबाणी के उपदेश दृढ़ हो गए थे, जिन्हें वह अपने दैनिक जीवन में कमा रहा था ।

धंनु धनु से साह है जि **नामि करहि वापारु ॥**
वणजारे सिख आवदे सबदि लघावणहारु ॥

जन नानक जिन कउ क्रिपा भई तिन सेविआ सिरजणहारु ॥

(पृ. ३१३)

इस प्रकार मानव जीवन को –

बुरे से अच्छा
मलिन से निर्मल
'मायकी' से 'दैवीय'
दुखी से सुखी
मनमुख से गुरमुख

बनाने के लिए –

मानसिक अवगुणों से परहेज़ या त्याग

तथा

दैवीय गुणों को ग्रहण करना या कमाना

अत्यंत आवश्यक है, तब ही हमारा मन अंतरमुखी होकर 'सिमरन' में जुट सकता है ।

- क्रमश